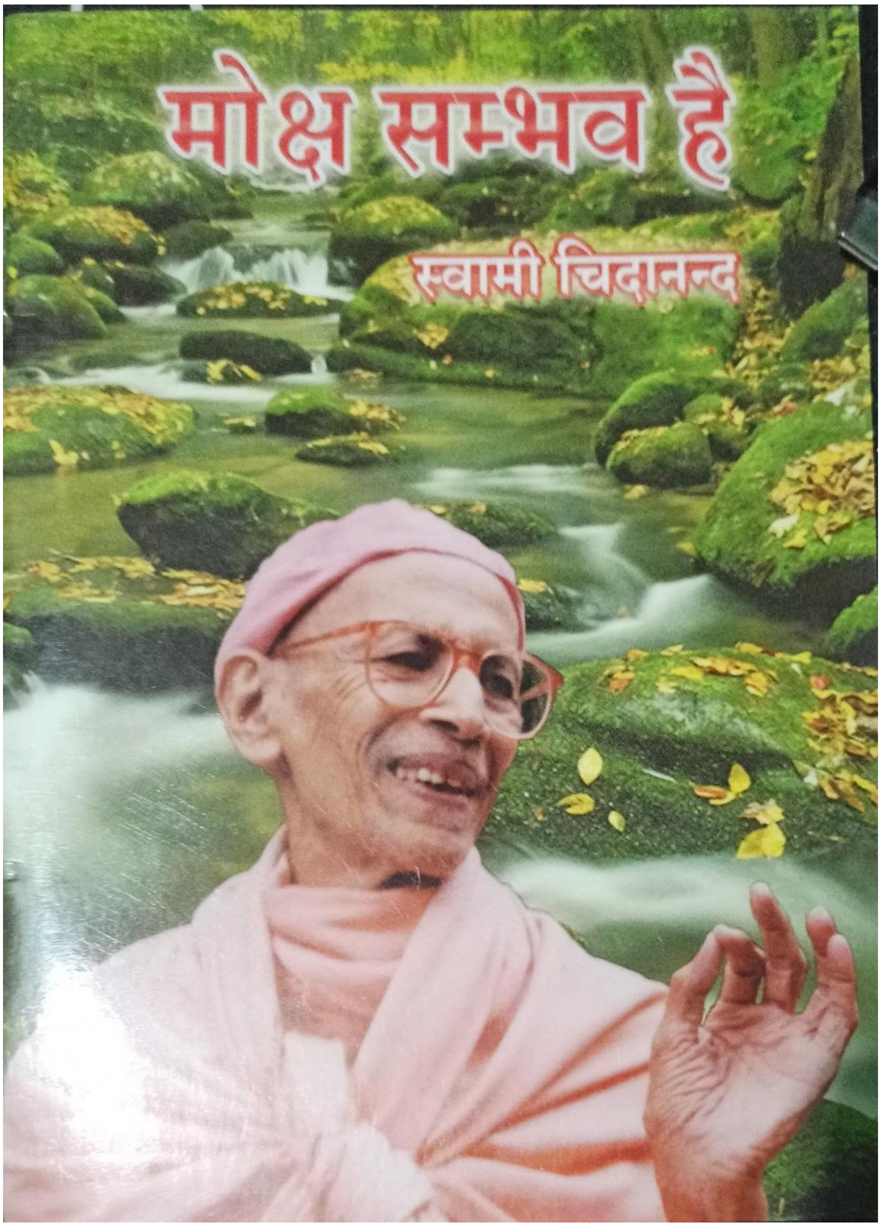


मोक्ष सम्भव है!

श्री स्वामी चिदानन्द

अनुवादिका
श्रीमती गुलशन सचदेव

प्रकाशक
द डिवाइन लाइफ सोसायटी
पत्रालय : शिवानन्दनगर-२४९ १९२
जिला : टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड (हिमालय), भारत
www.sivanandaonline.org, www.dlshq.org

प्रथम हिन्दी संस्करण : २००४
द्वितीय हिन्दी संस्करण : २०१६
तृतीय हिन्दी संस्करण : २०२२ (५०० प्रतियाँ)

HC 50
ISBN 81-7052-170-X

PRICE: 35/-

'द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर' के लिए
स्वामी पद्मनाभानन्द द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा 'योग-वेदान्त
फारेस्ट एकाडेमी प्रेस, पो. शिवानन्दनगर-२४९ १९२,
जिला टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड' में मुद्रित।
For online orders and Catalogue visit: disbooks.org

प्रकाशकीय

पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के साथ श्री स्वामी चिदानन्द जी की प्रथम भेंट और आश्रम में उनके शुभागमन की षष्ट्यब्दि के शुभ अवसर पर उनके द्वारा ब्राह्ममुहूर्त में ध्यानोपरान्त दिये गये प्रवचनों की श्रृंखला आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है।

मंगल संयोगवश आश्रम में पूज्य श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज का शुभागमन बुद्ध जयन्ती के दिवस पर हुआ था। भगवान् बुद्ध की ही भाँति स्वामी जी महाराज का जीवन दया और त्याग की प्रतिमूर्ति है। स्वामी जी महाराज एक अत्यन्त तात्त्विक शिक्षक भी हैं। वे सतत स्मरण कराते रहते हैं कि मोक्ष और भगवद्-साक्षात्कार हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। "आप इसी के लिए बने हैं" -ऐसा वे आश्वासन देते हैं और उनका जीवन भी इस सत्य का एक जीवन्त दृष्टान्त है कि मोक्ष सम्भव है।

१९ मई २००३

-द डिवाइन लाइफ सोसायटी

विषय–सूची

प्रकाशकीय 2
१. क्या मोक्ष सम्भव है? 3
२. दिव्यता का अनुसरण करें 4
३. सतत प्रयास और आकांक्षा द्वारा सफलता 5
४. वास्तविक सफलता क्या है? 7
५. सुख का महत्व 7
६. कठिनाइयों के प्रति एक भिन्न दृष्टिकोण 8
७. संसार हमारा शत्रु नहीं है ! 10
८. मानवीय परिस्थिति में परमात्मा की विद्यमानता 12
९ अपरिमेय शक्ति के स्रोत को पकड़ें 14
१०. सदा आशावादी बनें! 16
११. तुम 'वहीं' हो ! 17
१२.हमारे और ब्रह्म के मध्य अन्तराल नहीं है 19

१. क्या मोक्ष सम्भव है?

गुरु की दिव्य कृपा तथा यथेच्छ आशीर्वाद आपकी हार्दिक कामनाओं को पूर्णता प्रदान करें, आपके जीवन के परम लक्ष्य को पूर्ण करे जिससे आप इसी जीवन में, इसी शरीर में मोक्ष को प्राप्त कर लें। दुःख, शोक और मोह का आपके लिए कोई अर्थ न रहे। बन्धन का कोई अर्थ न रहे और मृत्यु का कोई अर्थ न रहे। यही लक्ष्य है, यही उद्देश्य है। इस प्रकार आप अपनी शाश्वत प्रकृति के बोध तथा जागरूकता की अवस्था में प्रतिष्ठित हों, यही प्रार्थना है।

इस सम्भावना की घोषणा और पुनरावृत्ति धर्मग्रन्थों में पुनः पुनः की गयी है। इसी जन्म में मोक्ष प्राप्त करना और 'जीवन्मुक्त' बनना मनुष्य का परम लक्ष्य है। क्या यह सम्भव है? हम इसका सीधा उत्तर नहीं दे सकते; परन्तु यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि यह असम्भव नहीं है। यही आश्वासन पर्याप्त है। इसका अर्थ है कि यह सम्भव है; परन्तु आवश्यक नहीं कि यह उतना सरल हो जितना एक अच्छा मिष्टान्न खाना। मिष्टान्न खाना आसान हो सकता है; परन्तु उसको तैयार करने के लिए परिश्रम आवश्यक है।

सभी प्रबुद्धजनों ने स्वयं मोक्ष प्राप्त करके घोषणा कर दी है कि मौस सम्भव है। जो एक व्यक्ति ने प्राप्त किया है, उसे सभी प्राप्त कर सकते हैं। इसी के लिए तो आप बने हैं।

२. दिव्यता का अनुसरण करें

उस परम दिव्य पुरुष को, शाश्वत एवं असीम सार्वभौमिक परमात्म-तत्त्व को, अनादि-अनन्त, बन्धन-रहित, अपार, सच्चिदानन्द- स्वरूप, आध्यात्मिक सत्ता को वन्दन-जिसकी प्राप्ति मनुष्य को सब प्रकार के दुःख, दर्द और शोक से मुक्त कर देती है। परमानन्द की अनुभूति होने पर वह सदा के लिए उसी आनन्द में स्थित हो जाता है।

हमारे पूर्वजों ने उस परम अनुभूति को प्राप्त करने की तीव्र आकांक्षा और उसकी अनुभूति की बहुत प्रशंसा और संस्तुति की है। यह आकांक्षा अथवा मुमुक्षुत्व मन में बसी उन अगणित इच्छाओं की भाँति नहीं है जिन्हें आप प्राप्त करना चाहते हैं। यह इच्छा किसी वस्तु को प्राप्त करने की नहीं है; क्योंकि एक व्यक्ति इस महान् अनुभव को प्राप्त करने योग्य तभी बन सकता है, जब वह परमात्मा द्वारा उत्पन्न की गयी सभी वस्तुओं को प्राप्त करने की इच्छा का त्याग कर दे।

अतः यह सम्पूर्ण रूप से सर्वस्व का त्याग है-ऐसा त्याग राजकुमार सिद्धार्थ ने वन में एक तपस्वी बनने के लिए किया था। ऐसा महान् त्याग राजा भर्तृहरि और राजा गोपीचन्द ने किया था। उनके पास राजसत्ता थी। उन्होंने राज्यों पर शासन किया। परन्तु उन्हें यह ज्ञान था कि परमात्मा ने उन्हें इस धरा पर ईश्वरानुभूति प्राप्त करने हेतु भेजा था तथा इस दिव्य अनुभूति को पाने के लिए ही भगवान् ने उन्हें मनुष्य-शरीर दिया था।

और उन्होंने कहा- "हम इस कार्य द्वारा ईश्वरेच्छा को पूर्ण करेंगे, हम सब-कुछ त्याग देंगे।" और भगवान् ने उन्हें सब-कुछ दे दिया। सांसारिक वस्तुओं का त्याग करके उन्होंने उस शाश्वत आनन्द को प्राप्त

किया जो अतुल्य है, ऐसी शान्ति प्राप्त की जो बुद्धि से अतीत है और उन्हें अमर शाश्वत जीवन की प्राप्ति हुई।

अतः भगवद्-प्राप्ति की जिज्ञासा के तथ्य को समझना और विचारना चाहिए। यह संसार के प्रति नकारात्मक नहीं है, जैसा कि कई लोग एक त्यागी को समझते हैं-तुम संसार से दूर जा रहे हो; दूर भाग रहे हो तुम इसकी और अन्य सैकड़ों महत्त्वपूर्ण, अर्थपूर्ण एवं श्रेष्ठ कार्यों की उपेक्षा कर रहे हो, यह ईश्वरेच्छा के विपरीत है। जो इस प्रकार सोचते हैं, वे यह नहीं जानते कि यह त्याग वास्तव में परमात्मा की इच्छा की ही पूर्ति है।

अतः आलोचना तो सदा होती ही रहेगी। आप संसार और उसकी संकुचित दृष्टि तथा विचारधारा को बदल नहीं सकते। उन्हें वैसा ही रहने दें। उन्हें शान्ति प्राप्त हो। आप अपनी दिव्यता का अनुसरण करें। दैवी शक्तियाँ भी प्रसन्न होंगी। भगवान् स्वयं आपके कर्म की सराहना करेंगे। वे आप पर अपनी अहेतुकी कृपा की वर्षा करेंगे। यही सत्य है।

अतः हम सर्वशक्तिमान् परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वे हमें भगवद्-साक्षात्कार के इस गौरवान्वित मार्ग पर चलते रहने के लिए शक्ति, साहस, सही दृष्टि और दृढ़-संकल्प प्रदान करें। गुरुदेव की शिक्षा हमें इस परम अनुभव को प्राप्त करने में सहायता करे। भगवान् आप सबका मंगल करें!

३. सतत प्रयास और आकांक्षा द्वारा सफलता

जब आध्यात्मिक जिज्ञासु और साधक मार्ग-प्रशस्ति की इच्छा रखते हैं, जब वे अपनी कठिनाइयों और संशयों के विषय में स्पष्टीकरण या कोई सम्मति चाहते हैं, तो उन्हें अन्तिम सम्मति यही दी जाती है "जो-कुछ आप कर रहे हैं, उसे करते रहिए; परन्तु उसे धीरे-धीरे बढ़ाते रहिए। उसे अधिक-से-अधिक कीजिए। अपनी साधना को बढ़ाइए और उसमें दृढ़ रहिए। यही उपाय है।"

असहनशीलता किसी भी प्रकार सहायक नहीं होती। किसी भी यात्रा में आपको अपने स्थान से गन्तव्य तक की दूरी तय करनी पड़ती है। यदि गन्तव्य तक शीघ्र पहुँचने के इच्छुक हैं, तो आप अपनी गति को थोड़ा और बढ़ाइए। इसके साथ ही, जितनी दूरी आप अभी तक तय करते रहे हैं, उससे अधिक दूरी तय करिए। यदि आप अभी तक दिन में छह घण्टे पैदल चल रहे हैं, तो अब सात या आठ घण्टे चलिए। इस प्रकार एक यात्री अपने गन्तव्य तक शीघ्र पहुँचने की इच्छा पूर्ण कर पायेगा।

इसी प्रकार आध्यात्मिक जीवन में साधक को अपनी साधना धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिए और उसमें दृढ़ रहना चाहिए-चाहे वह जप, ध्यान, स्वाध्याय, प्रभु-वन्दना या अपने कर्तव्य-कर्म के मध्य प्रभु को याद करना हो। किसी भ्रम को अपने रास्ते की रुकावट मत बनने दीजिए। संशयों को वहीं रहने दीजिए, आप अपनी साधना और अधिक उत्साह के साथ करते जाइए। सामान्यतः यह क्रिया स्वयं ही कई बार सन्देह दूर कर देती है। कुछ समय पूर्व हम जो नहीं समझ पा रहे थे, उसी बात को समझने लगते हैं और साधना में प्रगतिशील होते हैं।

आध्यात्मिक जीवन में सभी सफल होना चाहते हैं। यह स्वाभाविक ही है। साधना में दृढ़ रह कर और उसका निरन्तर विकास करके हम सफलता प्राप्त कर सकते हैं। जो साधना आप कर रहे हैं, उसे करते रहिए और बढ़ाते जाइए। निरन्तर अपनी साधना में बिना रुके बढ़ते रहना ही अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचने का सुनिश्चित मार्ग है। दिन-प्रति-दिन उत्साहपूर्वक अपनी साधना में वृद्धि कीजिए। यही सफलता की कुंजी है।

दृष्टान्तरूपेण प्रत्येक नदी निरन्तर आगे बढ़ते रहने के कारण ही समुद्र में जा कर मिलती है। रास्ते में आने वाली बाधाओं की परवाह न करते हुए वह आगे बढ़ती जाती है। हमारे पूर्वजों ने इसकी तुलना एक पात्र से दूसरे पात्र में गिरने वाली तेल की धारा से की है। जिस प्रकार तैल-धारा सतत और अटूट होती है, उसी प्रकार हमारा आन्तरिक आध्यात्मिक जीवन और साधना होनी चाहिए।

इसके साथ ही, अपनी इच्छा-शक्ति को अग्नि की भाँति जीवन्त रखिए। सिद्धों और सन्तों ने इस श्रेष्ठ इच्छा के बारे में सामान्य सामाजिक जीवन में से नित्य-प्रति के उदाहरण दे कर बताया है। भगवान् से मिलने की आपकी इच्छा अगर इतनी तीव्र हो, जितनी एक विश्वासघातिनी पत्नी की अपने प्रेमी से छिप कर मिलने की होती है, या एक कृपण की तरह जो अपने धन को बढ़ाने के लिए निरन्तर सोचता रहता है, या एक विलासी पुरुष की भाँति जो दिन-रात विलासिता में लीन रहता है, तब आप अवश्य भगवद्-प्राप्ति कर लेंगे। आपको भगवद्-साक्षात्कार हो जायेगा।

इसी आधार पर एक सिद्ध ने यह विश्वास दिलाया - "अगर आपमें एक विश्वासघातिनी पत्नी, कंजूस और विलासी पुरुष की विलासिता की भाँति इच्छाओं की तत्परता है-और फिर भी आप भगवद्-प्राप्ति नहीं करते, तो मैं उत्तरदायी हूँ। मैं निजी विश्वास दिलाता हूँ।" पूर्व और पश्चिम के कई सिद्धों में इसी प्रकार की इच्छा थी।

इन सब बातों का सार यह है कि हमें मन्दोत्साही नहीं होना चाहिए। हमें पूर्णरूपेण उसी इच्छा का साकार रूप बन जाना चाहिए। यही सम्पूर्ण आध्यात्मिक जीवन तथा साधना का गहन सत्य है। एक साधक के हृदय में यही आन्तरिक सन्तोष होना चाहिए।

हमें गहन मनन करना चाहिए और आकांक्षा, सतत प्रयास, भक्ति का जीवन और सिद्ध-जीवन के तथ्यों का अनुसरण करके लाभ उठाना चाहिए। प्रभु-कृपा और श्रद्धेय गुरुदेव के आशीर्वाद हमें ऐसे जिज्ञासु साधक बनने के योग्य करें और इसी को एक कसौटी के रूप में अपने समक्ष रखने की सामर्थ्य दें!

४. वास्तविक सफलता क्या है?

सार्वभौमिक दिव्य तत्त्व पराशक्ति को करबद्ध प्रणाम जो सभी व्यक्त नाम-रूपों से परे, श्रेष्ठ, शाश्वत, असीम, नाम-रूप से अतीत और अद्वितीय है, पुनरपि सम्पूर्ण है, जिसे पूर्णत्व की प्राप्ति हेतु किसी सम्पूरक की और सहायता के लिए किसी अन्य तत्त्व की आवश्यकता नहीं है।

इस तत्त्व की अनिर्वचनीय पूर्णता के अति-अल्प भाग से अनन्त अरब-खरब, दशपरार्ध ब्रह्माण्ड प्रकट हुए हैं। उस सत्ता के अति-सूक्ष्म भाग में इन अगणित ब्रह्माण्डों का उदय, विकास और पुनः उसी में लय होता है। इसीलिए इसे अतीन्द्रिय कहा जाता है; क्योंकि इसे ग्रहण करना या समझना मानवीय चिन्तन और तर्क से परे है।

एक अत्यन्त प्रबुद्ध महान् व्यक्ति ने सबसे आश्चर्यजनक सत्य उद्घाटित करते हुए कहा- "जीवो-ब्रह्मैव नापरः- तुम उस परम तत्त्व के अतिरिक्त कुछ और नहीं हो।" इस अविश्वसनीय, अग्राह्य, अचिन्त्य सत्य को समझना और भी कठिन है। परन्तु इसे इतनी दृढ़ता, विश्वास और निश्चय के साथ कहा गया है कि यह हमें सोचने के लिए बाध्य कर देता है, क्योंकि इसके पीछे निजी आत्म-साक्षात्कार की शक्ति और बल है। इसीलिए इसमें इतना बल है।

उस परब्रह्म के साथ हमारी एकरूपता-'तत् त्वम् असि' का उद्घोष मानव जीव द्वारा धरती पर की गयी सबसे श्रेष्ठ खोज है। यह मानव-अनुभव का सर्वोच्च गन्तव्य है। यह दर्शाती है कि मानवीय चेतना कितनी ऊँचाई तक पहुँचने में समर्थ है और यह भी बताती है कि हम सबमें भी उस ऊँचाई तक पहुँचने की क्षमता निहित है। साथ ही यह सर्वोच्च रूप से आश्चर्यचकित कर देने वाली और सन्तोषप्रदायक दोनों ही है, क्योंकि यह हमें प्रेरणा देती है कि हम सफलता प्राप्त करने के लिए अपनी सारी शक्ति लगा दें।

सफलता क्या है? सच्ची सफलता क्या है? क्या इस प्राप्ति को हम सफलता कह सकते हैं? एक कहावत है कि यात्रा का उत्साह और हर्ष यात्रा करने में ही है, गन्तव्य तक पहुँचने में नहीं। गन्तव्य तक पहुँचने पर वह प्रतिदिन का रोमांच, सुख, उत्सुकता और उत्साह समाप्त हो जाता है।

इस ढंग से देखें तो यह दृष्टिकोण हमें उस कार्य को करने के लिए उत्साह और उल्लास से भर देता है। कार्य को समाप्त करने में उतना सुख नहीं मिलता जितना कार्य करते रहने में मिलता है। कार्य पूर्ण होने का अपना सन्तोष हो सकता है; परन्तु कार्य-सिद्धि के दौरान प्रतिदिन के सुख से इसकी तुलना नहीं की जा सकती।

इस नूतन दृष्टिकोण के अनुसार-सफलता जीवन के उस परम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए स्वयं को पूर्णरूपेण आनन्दपूर्वक समर्पित करना है। वह स्वयं में ही सफलता है। यदि आप इस महान् यात्रा को प्रारम्भ कर सकते हैं, तो पूर्णता और मोक्ष के मार्ग पर चलें, चलते रहें-अपने अस्तित्व की समस्त शक्तियों के साथ-अन्त तक अपनी समग्र शक्ति के साथ तब तक लगे रहें-जब तक आप गौरवशाली सफलता नहीं प्राप्त कर लेते। इसमें कोई सन्देह नहीं है। स्वर्गिक लोक की सारी प्रशंसा आपकी है। देवता प्रसन्न होते हैं और परमात्मा निश्चय ही कृपा, प्रेम और सन्तोष की दृष्टि से देखते हैं-"मेरा यह पुत्र सुयोग्य है। इसने मेरे द्वारा दिये गये उपहार का योग्यतापूर्वक प्रयोग किया है, यह मेरा कहलाये जाने के योग्य है।"

आपका जीवन इस प्रकार का होना चाहिए। परम पिता परमात्मा हमें आशीर्वाद दें! परम पूज्य गुरुदेव का श्रेष्ठतम आशीर्वाद हमारे जीवन को इस प्रकार का बनाये !

५. सुख का महत्व

उस परम, शाश्वत और अनन्त, काल और बन्धन-रहित सत्ता को श्रद्धा-सहित प्रणाम-जो ज्ञानातीत है, जिसकी अचिन्त्य, अनिर्वचनीय और अलौकिक महिमा मन और वाणी की आश्चर्यजनक शक्ति से परे है। उसकी दिव्य कृपा हम पर सदा रहे!

परम पूज्य सद्गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज को सादर अभिनन्दन, जिन्होंने अपने प्रकाशमय व्यक्तित्व, उज्ज्वल आभा-मण्डल और चमकती आँखों से हमें उस परम सत्ता के स्वरूप की धुँधली-सी छवि दिखायी, जिसकी अनुभूति में वे दृढ़तापूर्वक प्रतिष्ठित थे। वे दिव्यता के प्रकाश से प्रतिभासित थे। उस सर्वातीत की ओर की इस परम यात्रा में उनकी कृपा सदा हमारे ऊपर बनी रहे !

हमने इस परम गन्तव्य तक पहुँचने के रोमांच, आध्यात्मिक साहसपूर्ण कार्य के हर्ष और यात्रा की चर्चा की और बताया कि हर्ष और उत्साह गन्तव्य तक पहुँचने में उतना नहीं, जितना उस परम लक्ष्य तक पहुँचने के ऊर्ध्वगामी प्रयास में है। यात्रा करते रहने में ही सुख है।

परन्तु यह मात्र कहने के ढंग की ही बात नहीं, अपितु आवश्यक भी है। यह अनिवार्य और महत्त्वपूर्ण भी है; क्योंकि यदि आपको किसी कार्य में वास्तविक सुख और प्रसन्नता नहीं मिलती, तो आप उसे उत्साहपूर्वक नहीं कर सकते और उस कार्य के लिए हृदय और मन से पूर्णरूपेण समर्पित नहीं हो सकते। उस कार्य के लिए आपकी लगन और कार्य करने की विधि अधूरे मन की ही होगी।

वास्तविक सुख और आनन्द के अभाव में आप अपनी सम्पूर्ण शक्ति, क्षमता और सामर्थ्य को एकाग्र नहीं कर पायेंगे। यह आपके जीवन का एक अंश होगा, न कि सम्पूर्ण जीवन। उस परम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए, आप समग्रतापूर्वक नहीं लग सकेंगे। अतः यह आपके जीवन का एक अंश-मात्र रहेगा जो इस श्रेष्ठ कार्य में संलग्न है, जब कि दूसरा अंश किसी दूसरे कार्य में लगा है।

परन्तु यह केवल एक श्रेष्ठ कार्य मात्र ही नहीं है। यह इतना अधिक श्रेष्ठ है कि आप अपने अधांश से इसे कार्यान्वित नहीं कर सकते। यह जीवन का वह विलक्षण आयाम है जो पूर्णत्व हेतु आपके सम्पूर्ण जीवन की समस्त शक्तियाँ, पूर्ण समय, परिपूर्ण बल, ध्यान और परिश्रम की अपेक्षा करता है। यदि इस अन्वेषण के लिए आप पूर्ण रूप से समर्पित हैं, तो आप आश्वस्त हो सकते हैं कि भगवान् इसी प्रकार के समर्पित साधक, जिज्ञासु और भक्त को पूर्णरूपेण वरण करेंगे। सभी महान् व्यक्तियों का यही अनुभव रहा है। विविध प्रकार से उन्होंने हमें यह बताने का प्रयास किया है।

अपने सर्वांगिक अस्तित्व, हृदय, मन और आत्मा का पूर्णरूपेण समर्पण तभी सम्भव है, जब आपको उससे आनन्द की अनुभूति हो। यदि यह कार्य आपको परम उत्साह, प्रसन्नता और आन्तरिक हर्ष से भर देता है, तभी यह पूर्ण समर्पण-जो अत्यन्त आवश्यक है- सम्भव है।

अतः यह आनन्द का महत्त्व है। भगवद्-साक्षात्त्कार के इस कठिन कार्य में स्वयं को लगाये रखना आवश्यक है। आत्मानुभूति प्राप्त करने के लिए यह प्रबुद्धता और प्रकाशपूर्ण कार्य, यह अनुभवातीत, दुष्कर कार्य करना परम आवश्यक है। यही सत्य है। परमात्मा और सद्गुरुदेव इस सत्य का दर्शन और परम लक्ष्य की प्राप्ति में सफलता हेतु हमारी सहायता करें! भगवान् आप सब पर कृपा करें!

६. कठिनाइयों के प्रति एक भिन्न दृष्टिकोण

कभी-कभी जिज्ञासु अपने-आपसे प्रश्न करते हैं- "ऐसा क्यों है कि एक आध्यात्मिक साधक अनेक कठिनाइयों, रुकावटों, बाधाओं और अनेक ऐसी उलझन-भरी परिस्थितियों से ग्रसित हो जाता है, जो ऐसे सामान्य मनुष्य के जीवन में नहीं दिखायी देतीं जो अपने लौकिक व्यवसाय पर जा रहा है? उसे आयकर के सम्बन्ध में या अपने पुत्र को अच्छे विद्यालय में प्रवेश कराने में कठिनाइयाँ हो सकती हैं; परन्तु अपने वास्तविक जीवन में उसे उन गहन आन्तरिक समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ता।"

मूल रूप से इसका उत्तर यही है कि आध्यात्मिक जीवन सामान्य जीवन से हट कर है। यह अन्तर ठीक उसी प्रकार से है जैसे एक व्यक्ति तो गहन जल में उतर कर उसी धारा के प्रवाह की ओर आगे बढ़ता जाता है और अन्य व्यक्ति प्रवाह के विपरीत चलता है। स्वाभाविक रूप से जो व्यक्ति धारा के प्रवाह के विपरीत ऊर्ध्वगमन करता है, उसे अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है, जब कि वह व्यक्ति जो धारा के साथ निम्न दिशा में अग्रसर होता है, उसे कम प्रयास करना पड़ता है। वह अल्प प्रयास में जल के वेग से ही आगे बढ़ जाता है। स्पष्ट है, हमारी समस्याओं का यही कारण है।

आपने अपने लिए एक महान् लक्ष्य निर्धारित किया है और उस लक्ष्य तक सुगमतापूर्वक पहुँचने के लिए एक मार्ग है-ऐसी महान् विभूतियों के पद-चिह्नों पर चलना जो पहले ही अपने लक्ष्य को प्राप्त कर चुके हैं। उन्होंन इसी मार्ग का अनुसरण किया है और ऐसा ही जीवन यापन किया है, अनेकों समस्याओं का सामना करके ही अपने लक्ष्य को प्राप्त किया है। जिस प्रकार सभी बाधाओं को पार करके उन्होंने अपने लक्ष्य की प्राप्ति की, उन्हीं पद-चिह्नों के अनुयायी बनें। अतः सन्तों के जीवन पर चिन्तन करें। अपने आदर्श

के रूप में उन्हें अपने समक्ष रखें, उनके जीवन से प्रेरणा प्राप्त करें और उनके आध्यात्मिक ज्ञान और शिक्षण से मार्गदर्शन भी प्राप्त करें। उन्होंने अपने जीवन को एक आदर्श रूप में रखा है। अपनी व्यक्तिगत शिक्षाओं और उपदेशों द्वारा बहुमूल्य संकेत-सूचक स्थापित किये हैं। इस प्रकार हम सन्तों के जीवन से लाभान्वित हो सकते हैं। अतः इस पथ पर अग्रसर होने के लिए एक विवेकपूर्ण मार्ग है-किसी आदर्श सन्त के जीवन को प्रेरणा-स्रोत मानना और उनसे प्रेरणा प्राप्त करना।

कोई गहन समस्या जो हमारे मार्ग में बाधक प्रतीत होती है, उसे सुलझाने का द्वितीय उपाय है कि हम उसके प्रति अपना दृष्टिकोण परिवर्तित कर लें और कहें-"नहीं, यह कोई समस्या नहीं है। यह परिस्थिति मेरे लिए आवश्यक है। भगवान् मेरी वास्तविक स्थिति से परिचित हैं। मैं कहाँ पहुँचा हूँ, यह वे जानते हैं। आध्यात्मिक विकास के इस बिन्दु पर आत्मज्ञान-प्राप्ति हेतु मुझे इसी आन्तरिक शक्ति की आवश्यकता है और आगे बढ़ने के लिए भी इसी की आवश्यकता है।"

अतः समस्या के प्रति यह एक अन्य दृष्टिकोण है कि इसका स्वागत करें। "यह मेरे लिए आवश्यक है, इसीलिए ऐसा हुआ है, अन्यथा ऐसा नहीं होता। यदि मैं विकास के उच्चतर स्तर पर पहुँच जाऊँ, तब यह परिस्थिति नहीं आयेगी; क्योंकि तब मैं इससे परे जा चुका होऊँगा। तब मुझे इसकी आवश्यकता नहीं रहेगी।"

अतः अब हम समस्या को समस्या न मान कर आन्तरिक जीवन, आभ्यन्तर साधना और अभ्यास तथा वैराग्य द्वारा हमने जो कुछ भी सीखा है और अब तक जितना भी अन्तःकरण का विकास किया है, उसकी अभिव्यक्ति का सौभाग्य अथवा अवसर मानते हैं। अब हमें जीवन-क्षेत्र में इसका परीक्षण करना है। इस प्रकार वह परिस्थिति और वह प्रतीत होने वाली समस्या हमें स्व-परीक्षण करने का अवसर प्रदान करती है कि हमने कितनी प्रगति की है। हमें इसे एक चुनौती के रूप में लेना है कि हमने अब तक जो-कुछ भी प्राप्त किया है, उसमें हम पूर्णरूपेण स्थित हैं- हम रेत की नींव पर नहीं, प्रत्युत् चट्टान पर खड़े हैं।

अतः प्रत्येक वस्तुस्थिति को रचनात्मक, सकारात्मक और सृजनात्मक भाव से ग्रहण करें। आध्यात्मिक जीवन में आगे बढ़ने और अपने उत्साह को बनाये रखने का यही मार्ग है। इन परिस्थितियों का आन्तरिक मूल्य पहचानें, यह जान लें कि ये महत्त्वपूर्ण और आवश्यक हैं और इनसे हम उपलब्धि प्राप्त कर सकते हैं। परमात्मा हम सब पर कृपा करें!

७. संसार हमारा शत्रु नहीं है !

हमारा लक्ष्य अद्वितीय परम सत्ता से एक होना है, यद्यपि हम बाह्य सांसारिक जीवन में अपना आध्यात्मिक जीवन यापन करते हैं। अतः हमें केवल आन्तरिक आध्यात्मिक जगत् में ही नहीं, प्रत्युत् उस बाह्य आध्यात्मिक आयाम में भी कार्य करना पड़ता है जो स्थूल, भौतिक, ऐन्द्रिय विषयों आदि अनेक रूपों में हमारे समक्ष अभिव्यक्ति है।

असमान प्रतीत होते इन दोनों पक्षों में हमें इन दोनों के बीच के सामंजस्य और पारस्परिक प्रभाव पर ध्यान देने की आवश्यकता है। क्या हम इन दोनों को जीवन में नकारात्मक रूप में अथवा न्यूनता के रूप में सहन करें या इन्हें दूसरे दृष्टिकोण से समझें? क्या हम इन्हें इस तरह से समझें, प्रयोग में लायें और इनसे लाभ उठायें कि द्वैतभाव होने पर भी दोनों के मध्य कोई विरोधी द्विभाजन नहीं है ?

क्या प्रकृति इस सम्बन्ध में हमारा मार्ग प्रशस्त कर सकती है अथवा कुछ दे सकती है? क्या यह सहायक हो सकती है? जहाँ द्विविध तत्त्व हों, क्या वहाँ विरोधाभास अपरिहार्य है या द्विविध तत्त्व दो अर्ध भाग हैं जो अन्त में एक में परिणत हो जाते हैं -क्या वे एक-दूसरे के पूरक और पूर्णता प्रदान करने वाले हैं? वास्तविक स्थिति क्या है?

भगवद्गीता में यह बताया गया है कि हम तीनों गुणों में बरतते हैं; क्योंकि हम वैश्विक प्रकृति में हैं और प्रकृति तीन गुणों से बनी है। अतः वे हमारे जीवन का भाग हैं। 'सत्त्व' गुण मनुष्य को ऊर्ध्वगामी बनाता है, 'रजस्' सम-स्तर पर रखता है और 'तमस्' मनुष्य को अधोगति की ओर ले जाता है। यद्यपि ये एक-दूसरे के विपरीत प्रतीत होते हैं; परन्तु हमें यह बताया गया है कि तीनों गुण आवश्यक हैं और प्रत्येक का तर्कसंगत, यथार्थ कार्य है। ये अनिवार्य हैं।

यदि हम प्रकृति की ओर ध्यान से देखें, तो हम देखते हैं कि एक वृक्ष धरती पर खड़ा होने में इसीलिए सक्षम है; क्योंकि उसकी जड़ें मिट्टी में गहरी हैं। साथ ही जड़ें भी धरती को दृढ़तापूर्वक और शक्तिशाली रूप से पकड़ने में प्रवृत्त होती हैं। जड़ें ढाँचा तैयार करती हैं, जब कि धरती वृक्ष को शक्ति के साथ खड़ा रखती है।

हम अनेक वस्तुओं के संसार से घिरे हुए हैं। क्या वे आवश्यक हैं? क्या वे अनावश्यक हैं? क्या वे हमारे आध्यात्मिक विकास की बाधाएँ हैं? वास्तव में वे हैं क्या ? यदि वे अनावश्यक होतीं, तो भगवान् उन्हें वहाँ रखते ही नहीं। अगर वे आवश्यक हैं, तो उनका कोई कारण होगा। उनका उद्देश्य क्या है? हमारी आध्यात्मिक प्रगति को रोकना तथा दुःखद समस्या और बाधा बन कर समक्ष आना? हमें इस पर गहन विचार करना चाहिए और इस चिन्तन से लाभ उठाना चाहिए।

कभी-कभी विरोधात्मक प्रतीत होते तत्त्व भी अर्थपूर्ण होते हैं। वे हमारे भीतर कुछ क्षमताएँ, कुछ निश्चय और दृढ़ धारणा जागृत करते हैं, जैसे-"मुझे इस पर निश्चित रूप से विजयी होना होगा।" वे आपके समक्ष एक चुनौती प्रस्तुत करते हैं और आपको अपनी बुद्धिमत्ता दिखानी है कि आप किस प्रकार उस चुनौती का सामना करते हैं और उस पर विजय प्राप्त करते हैं। ये तथ्य हमारे अन्तःकरण में अनेक सकारात्मक प्रक्रियाएँ घटित करते हैं। हम उसे एक चुनौती के रूप में स्वीकार करते हैं; अपनी बुद्धि का प्रयोग करके सोचते हैं-"हम इसे कैसे वश में करें?" वे हमारे भीतर दृढ़-प्रतिज्ञता और निश्चय की भावना जागृत करते हैं-"मुझे अवश्यमेव इससे निबटना है।"

अतः ये अनेक वस्तुओं के आभ्यन्तर प्रेरक हैं जो इनके अभाव में प्रेरित नहीं हो सकतीं। हम निष्प्रभ और नीरस होते। अतः हमारे अन्तःकरण के प्रेरक होने के कारण यह सर्वतः नकारात्मक नहीं हो सकते। इनका सकारात्मक और रचनात्मक उद्देश्य है जो मात्र पारस्परिकता से बढ़ कर उससे परे है। इनका प्रयोजन सकारात्मक है।

पतवार के बिना नाव चल नहीं सकती। नाव के बिना पतवार व्यर्थ है; उसका कोई प्रयोग नहीं है। जब दोनों साथ हों, तभी नदी पार करने में सहायक हो सकते हैं। ऊपर और नीचे की दन्तावली परस्पर युद्ध करने के लिए नहीं है। भोजन को ठीक प्रकार से चबाने के लिए दोनों की आवश्यकता है। अपने जीवन, पदार्थों और अन्तः- बाह्य के तथ्यों के प्रति हमारा यही दृष्टिकोण होना चाहिए। परमात्मा सर्वज्ञ हैं। वे भूल नहीं कर सकते।

अन्य सभी प्राणी-वर्ग, चाहे जितने भी शक्तिशाली, गतिशील और समर्थ हों, मार्ग में आगे बढ़ते हुए कोई बाधा आते ही अपनी दिशा परिवर्तित कर लेते हैं। केवल मनुष्य विचार करता है कि उस बाधा को कैसे पार किया जाये। वह अपनी दिशा नहीं बदलता, वरन् अपनी ऊर्ध्वगामी यात्रा पर गतिशील रहता है। यदि कोई नदी मार्ग में आती है, तो उसे पार करने के लिए वह उस पर पुल बनाता है। यदि पर्वत रेल-मार्ग की बाधा बनता है, तो मनुष्य उसमें सुरंग बना देता है। कदाचित् यह हमें शिक्षा प्रदान करता है। केवल मनुष्य ही ऐसा करता है, कोई और प्राणी नहीं कर सकता।

अतः सभी पदार्थ आवश्यकतानुसार प्रदान किये गये हैं। वे हमें परखते हैं और हमारी परीक्षा लेते हैं कि हम कहाँ तक सच्चे हैं? हम कहाँ तक दृढ़ निश्चयी है? हमारी महत्त्वाकांक्षाएँ किस प्रकार की हैं? कितनी संसार हमारा शत्रु नहीं है। सच्ची, यथार्थ और प्रमाणित हैं? अतः ये आवश्यक हैं। वे हमारे समक्ष चुनौती रखते हैं। वे हमें अपने आध्यात्मिक जीवन का आकलन करने का मार्ग दर्शाते हैं। इस प्रकार वे हमारी अर्थपूर्ण प्रगति में योगदान करते हैं।

यदि हम इन्हें इस प्रकार समझना आरम्भ करके इस दृष्टिकोण से देखें, तो इनके प्रति हमारी प्रतिक्रिया भी बदल जायेगी। जब ये नकारात्मक भावनाएँ हमें अशान्त करेंगी, तो हम शीघ्र निराश नहीं होंगे, न आश्चर्यचकित होंगे और न ही प्रगतिशील होने की सम्भावना पर सन्देह करेंगे। जब हम इनकी आवश्यकता पर विचार करेंगे, तो हम सरलतापूर्वक आत्म-विश्वास नहीं खोयेंगे और न ही निराश होंगे। ये हमारी परीक्षा लेने और हमें प्रशिक्षित करने आती हैं। हमारे भीतर छिपी सुप्त शक्तियों को जागृत करने आती हैं। ये चुनौतियाँ हैं।

इस प्रकार देखने से एक नवीन दृष्टिकोण आपके समक्ष आता है। आप उसे बुद्धिमत्तापूर्वक अपनाते हैं। उनके प्रति सभी प्रतिक्रियाएँ सकारात्मक हो जाती हैं। साधना और आध्यात्मिक जीवन के अतिरिक्त आपके सम्पूर्ण जीवन का नये ढंग और स्वभाव में नवीनीकरण हो जाता है। फिर इनकी प्रतिक्रिया नकारात्मक नहीं होती। इनका रूप सकारात्मक हो जाता है-"भगवान् ने ये परिस्थितियाँ भेजी हैं; ये आवश्यक हैं। मुझे समझना चाहिए कि मैं इनका किस प्रकार उपयोग करके इनसे लाभ उठा सकता हूँ।"

यह सम्पूर्ण प्रक्रिया अविश्वास अथवा शंका या उद्वेग या असुरक्षा और सन्देह से भरी नहीं है। यह पूर्णतया सकारात्मक और विवेक-सम्पन्न है। यह निर्माण और संरचना करने वाली है और अग्रसर होने की प्रक्रिया है। जिस संसार में रहते हुए हमें अपनी आध्यात्मिक 'साधना' का विस्तार करना है, उसे इसी दृष्टि से देखना चाहिए। तब हम संसार को एक शत्रु के रूप में नहीं, प्रत्युत् एक सर्वथा पृथक् रूप में देखेंगे।

परन्तु शास्त्रों ने विपरीत बात क्यों कही है? उन्होंने इसे माया, जाल और बन्धन बताया है। उनके अनुसार यह एक जंगल है जहाँ आप भटक जायेंगे, यह एक जाल है जिसमें आप फँस जायेंगे। इसका कारण है। यहाँ हमें सावधानी और ध्यानपूर्वक चलने के लिए कहा गया है। बस, यही बात है। क्योंकि यदि आप बुद्धिमान् और अनुभवी नहीं हैं, तो अनुभव और विवेक के अभाव में आप उनको बन्धन बना सकते हैं। ऐसा नहीं है कि वे बन्धन-युक्त हैं। वे हमें केवल यह बताना चाहते हैं-"यहाँ अमूल्य वस्तुएँ हैं; परन्तु यदि आप उनसे ठीक प्रकार का व्यवहार नहीं करेंगे, तो वे बन्धन बन सकती हैं। अतः अपनी आँखें खोलें, सावधानी और ध्यानपूर्वक आगे बढ़ें।"

जब मानवता उद्भव के निम्नतर स्तर पर थी और बुद्धिमत्ता विकसित नहीं हुई थी, तब कदाचित् इस नकारात्मकता का चित्रण करना आवश्यक था; परन्तु अब इसकी आवश्यकता नहीं है। इसके अवशेष यदि हम इस जीवन में भी बनाये रखते हैं, तो वह इस कारण से कि हम जीवन-क्षेत्र में साहसपूर्वक आगे बढ़ते हुए सावधान रहें। अपने आध्यात्मिक जीवन को जीने में इतना ध्यान रखना हमारे लिए अच्छा है। इस संसार और इसकी वस्तुओं को अपनी आध्यात्मिक शिक्षा और प्रशिक्षण का अंग बनाते समय इतना ध्यान तो हमें रखना ही है।

यही उपाय है संसार में व्यवहार करने का, जिससे यह हमारा शत्रु अथवा बाधा न बने और हम परस्पर सकारात्मक भाव बना कर विविध पदार्थों के उचित उपभोग द्वारा लाभान्वित हों। परमात्मा की कृपा और गुरुदेव का आशीर्वाद हमें इस प्रज्ञापूर्ण कार्य को करने में सक्षम बनायें जिससे हमारा कल्याण हो! भगवान् की कृपा हम सब पर हो!

८. मानवीय परिस्थिति में परमात्मा की विद्यमानता

उस परम, सार्वभौमिक, दिव्य सत्ता को सादर नमन, जो इस समय यहाँ है और इस पावन समाधि-स्थान में गुरुदेव की आध्यात्मिक सन्निधि में मिश्रित हो रही है। गुरुदेव की आध्यात्मिकता यहाँ है; क्योंकि जिस नश्वर देह में उन्होंने आधुनिक संसार में आध्यात्मिक पुनर्जीवन लाने हेतु वास किया, वही देह पूर्ण सम्मान के साथ यहाँ रखी गयी है। परम सार्वभौमिक सत्ता यहाँ विद्यमान है; क्योंकि अनुभवातीत होते हुए भी यह अत्यन्त सापेक्ष और व्यक्तिगत है। इसकी अनुभवातीतता, सर्वव्यापकता और अन्तरस्थ विद्यमानता के रहस्य को अत्यन्त उच्च आध्यात्मिक अनुभूति और बोध प्राप्त हुए सन्तों ने उद्घाटित किया है।

अतः हम एक ही समय में दो रूपों में विद्यमान हैं-आध्यात्मिक और दिव्य। इसी परिपेक्ष्य में हमें देखना है कि हमारे आध्यात्मिक विकास का साधन और उपलब्धि तथा मानवीय समस्याओं का समाधान इसी सत्य में निहित है। एक उपाय है-इस सत्य के प्रति जागरूक रहें, तब आप जहाँ भी रहेंगे, आपका अनुभव भगवद्-अनुभव रहेगा। आप कहीं भी हों, किसी भी अवस्था, परिवेश या परिस्थिति में हों, उसी में आप परमात्मा का सान्निध्य अनुभव करेंगे।

अतः भगवद्-उपस्थिति का यह अभ्यास आपके लिए भगवद्-ध्यान में विकास का माध्यम बन जायेगा जो अन्ततः भगवद्-साक्षात्कार में परिणत हो जायेगा। साथ ही, यह सत्य मनुष्य की समस्याओं के लिए भी उपाय दर्शाता है। मनुष्य की समस्या यह है कि परमात्मा ने उसे अपने साथ वार्तालाप करने का जो अन्तःकरण-रूपी स्थान प्रदान किया है, उसे वह इस परिवर्तनशील जगत् के विविध प्रकार के विचारों से आक्रान्त रखता है। जिन महापुरुषों ने उस भावातीत सत्ता को अनुभव किया है, उन्होंने यह बताया है- "अवसाद में न रहें। स्वयं को दुःखी न करें। बाह्य विक्षेप और विघ्नों के तथाकथित आक्रमण के मध्य एक सतत विद्यमान, सतत देदीप्यमान अचल दिव्यता का केन्द्र है। सब प्रकार के विक्षेपों के मध्य, विभिन्न मिश्रित विचारों के मध्य यह केन्द्र में कूटस्थ रूप से विराजित है।"

प्रत्येक श्वास के साथ इस अचल सत्य, इस आन्तरिक वास्तविकता और परमात्मा की उपस्थिति में सदा वास करने का आपने अभ्यास करना है। तब संसार में रहते हुए भी आप सदा भगवान् में ही वास

करेंगे। निरन्तर परिवर्तित होती परिस्थिति और अनुभव, जो कि आपके लौकिक जीवन का अनिवार्य अंग हैं, के मध्य में आपकी आन्तरिक वास्तविकता के रूप में यह अपरिवर्तनशील, अप्रभावित सत्य विद्यमान है।

इस पर प्रतिदिन सचेत हो कर ध्यान करना आध्यात्मिक साधना और आध्यात्मिक जीवन का प्रमुख अंग है। सत्संग, स्वाध्याय और स्मरण इसमें अत्यन्त सहायक हैं-"मैं तुममें हूँ। तुम मुझमें हो।" यह सत्य है। अन्य पदार्थ परिवर्तनशील हो सकते हैं। वे बदलते रहते हैं। उनमें परिवर्तन होता रहता है। बाह्य जगत् की असंख्य परिवर्तनशील गतिविधियों के मध्य यही अपरिवर्तनशील सत्ता है।

इस सत्य का मनन करें। इसका अभ्यास करें और अपनी कठिनाइयों के लिए उपाय स्वयं खोजें। सफलता अवश्यम्भावी है; क्योंकि भगवान् ने आपको अपनी छवि में बनाया है जो सफल होने के लिए है, असफल होने के लिए नहीं। यह जन्मसिद्ध विशेष अधिकार सर्वकाल में सभी मनुष्यों की विरासत है; क्योंकि सभी भगवान् की प्रतिच्छाया है।

यह मनुष्य की विलक्षणता है; परन्तु यह सभी की विरासत है। यदि आपने इसे प्राप्त किया है, तो इसलिए नहीं कि आप विशेष हैं। इसका कारण आपका अनूठापन है जो आपमें और अन्य मनुष्यों में भी है। आप भगवान् की दृष्टि में उत्कृष्ट हैं; परन्तु आपको यह नहीं सोचना चाहिए कि आप ही विशेष हैं। यदि आप विशेष हैं, तो अन्य सभी व्यक्ति भी विशेष हैं।

अतः हमें नम्र और सरल बनना चाहिए। बिना बात के अपना महत्त्व नहीं बढ़ाना चाहिए, क्योंकि हम बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। हम महत्त्वपूर्ण हैं; क्योंकि अन्य मनुष्य महत्त्वपूर्ण हैं, किसी विशेष रूप में नहीं। अतः विलक्षण और विशेष के बीच का सूक्ष्म अन्तर स्पष्ट रूप से समझना चाहिए। विशेष हमें अहंकारी बना सकता है, जब कि विलक्षणता हमें नम्र बनाती है। विलक्षणता में अहंकार का भय-सूचक संकेत निहित नहीं है।

अतः मानवीय धरातल पर हमें इस सत्य का अभ्यास करना है कि व्यक्तिगत कठिन परिस्थिति में भी भगवान् विराजमान हैं। हमें इस यथार्थ सत्य को अपना केन्द्र-बिन्दु बनाना है। मनुष्य की समस्याओं की अपेक्षा हमें इस पर अधिक बल देना है। अपने अस्तित्व में इसको अधिक महत्त्व देना है। तब सब ठीक हो जायेगा। जब आप भगवान् को केन्द्र बना लेंगे, तो अन्य पदार्थ स्वाभाविक रूप से उसकी परिधि में आ जायेंगे-क्योंकि केन्द्र केवल एक ही है।

अतः ईश्वर की विद्यमानता के अनुभव में सदा प्रतिष्ठित रहने का यह उपाय है। इसे अपने जीवन का मुख्य केन्द्र बनायें। तब सब-कुछ स्वतः ही अपने स्थान पर स्थित हो जायेगा। प्रभु-कृपा और गुरुदेव का स्नेहपूर्ण आशीष हमें इस सत्याभिमुख अन्तःस्थिति और मानसिक अवस्था को प्राप्त करने में समर्थ करे!

९ अपरिमेय शक्ति के स्रोत को पकड़ें

मनुष्य-जन्म उच्चतर महत्त्वाकाक्षाएँ, महान् व्यक्तियों से सम्पर्क की लालसा और उनके प्रेरक, आध्यात्मिक सन्देशों को आत्मसात् करना-यह सब आपकी सम्पत्ति है। आपका सौभाग्य इन्हीं गुणों से है। इन गुणों के अभाव में रहने वाले लोगों की अपेक्षा आप विशेष रूप से धन्य हैं।

मनुष्य-जन्म ले कर भी असंख्य लोग ऐसा जीवन व्यतीत करते हैं जिसमें उनकी मानवीय क्षमता न तो पूरी तरह से पहचान में आती है, न उसका अन्वेषण होता है और न ही कोई उपयोग। व्यर्थ के विविध क्रियाकलापों में वह क्षमता क्षीण हो जाती है। उसका कोई उपयोग नहीं हो पाता। इस प्रकार, धनवान् होते हुए भी ऐसे लोग निर्धन हैं। महान् सौभाग्यशाली होते हुए भी वे प्राणियों में अत्यन्त भाग्यहीन हैं; क्योंकि वे अपनी क्षमता और सौभाग्य को पहचान सकने तथा उसका उपयोग करने में असफल हैं।

तथापि, अपने सौभाग्य की पहचान करते हुए आओ, हम देखें कि निर्माण के क्षेत्र में हम क्या कर सकते हैं, सकारात्मक कार्य कैसे कर सकते हैं जो ऐसे शक्ति-स्रोत का निर्माण करे, जिससे हम वैभव प्राप्त कर सकें? यह स्रोत एक दुर्गवत् हो जिसमें से प्रगतिशील ऊर्जास्पद जीवन का प्राणप्रद जल प्राप्त हो। शक्ति के ऐसे स्रोत-निर्माण के लिए हम क्या कर सकते हैं? जो हम कर सकते हैं, उन सबका सविस्तार निरूपण करना सम्भव नहीं है; किन्तु उनमें से कुछ का वर्णन करना ही उस ओर निर्देश कर देगा।

कल्याण उसी व्यक्ति का होता है जो अँधेरे रास्तों को त्याग कर प्रकाश-पथ की ओर चलने का स्वभाव बना लेता है। संक्षेप में, आशावादी बनें। कभी यह मत कहें कि आप अमुक कार्य नहीं कर सकते। ऐसा कभी मत कहें कि यह सम्भव नहीं है। यह भी कभी न करें-"मुझ नराधम के लिए ऐसा नहीं हो सकता।"

आप कौन हैं यह कहने वाले कि आपके साथ क्या घटित हो सकता है और क्या नहीं? जब कि आपसे मी ऊपर एक उच्चतर सत्ता, शक्ति विद्यमान है जो सभी प्राणियों की देखभाल करती है और उनका जीवन संचालित करती है। इस निर्णय तक छलांग लगा कर पहुँचने वाले आप कौन हैं, मानो कि उसकी सर्वव्यापकता में आपने एक झरोखा बना लिया हो? आप उच्च स्थान लेने का प्रयास कर रहे हैं- "वह (परमात्मा) सब-कुछ जानता है। मैं जानता हूँ, वह क्या जानता है।"

यह एक इस प्रकार की मानसिकता है जिसके द्वारा हम स्वयं अपने शत्रु हो जाते हैं। ऐसे चिन्तन की अपेक्षा सकारात्मक क्यों नहीं बनते ? ऐसा क्यों नहीं कह सकते-मेरे विकास हेतु सब हो रहा है। मुझे विश्वास है, इसी में मेरा कल्याण है। क्यों? क्योंकि मैं जानता हूँ कि परमात्मा सर्वकल्याण-स्वरूप है। मैं कैसे जानता हूँ? सभी सन्त-महात्माओं का यही वचन है। सभी ज्ञानी महापुरुषों ने ऐसा ही कहा है। विश्व-भर के धर्मग्रन्थों ने ऐसा कहा है। वह सर्वमंगलमय है, परमानन्द है, महान् है, महिमा-मण्डित है। उसमें कुछ भी नकारात्मक नहीं है।"

युगों-युगों से धरती को अपने जीवन और उपदेशों से धन्य करने वाले सैकड़ों-सहस्रों ऋषियों ने उसका गुणगान किया है। इन महान् पुरुषों ने पराशक्ति की स्तुति सुस्पष्ट रूप में की है जिसमें कोरी भावुकता नहीं है, उस परम सत्ता से सम्बन्धित अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर उन्होंने परमात्मा की स्तुति की है। अतः हम पूर्ण विश्वास कर सकते हैं कि वह परम सत्ता परिपूर्ण आनन्दस्वरूप, सर्वमंगलमय और कल्याणकारी है। "अतः मैं सर्वथा सही और सुरक्षित रहूँगा यदि मैं इस धारणा को आधार मान कर जीवन की गतिविधियों को आगे बढ़ाऊँगा।"

बुद्धिमान् पुरुष अतीत से मुक्त रहता है, अतीत का चिन्तन नहीं करता। वह अतीत को लोहे की गेंद से जुड़ी हुई लोहे की श्रृंखला (जंजीर) नहीं मानता-"एक इंच भी आगे बढ़ने के लिए मेरे पास कोई आशा नहीं है। मैं जहाँ हूँ, वहीं पर अवसाद में मरने के लिए अभिशप्त हूँ।" यह विचारधारा एक निषेधात्मक प्रवृत्ति वाले निराशावादी की है जिसने हार मान ली है। वह सब ओर समस्याएँ ही देखता है। उसे यह ज्ञान नहीं है कि समस्या यहीं पर है। हमने स्वयं को ही एक गम्भीर समस्या बना लिया है और वह समस्या है आत्म-समस्या।

इसलिए आत्म-सृजित अज्ञान अन्धकार का यह बन्धन काटें और आशावाद की प्रकाशमयी ज्योति के सूर्य की ओर ऊर्ध्वगामी उच्च उड़ान भरें। ईसाई मत द्वारा निर्दिष्ट गुणों-जैसे आस्था, आशा और प्रेम-में आशा एक गुण है। आशा का उद्भव आस्था से भी है। निराशावाद से आशावाद में, नकारात्मकता से सकारात्मकता में स्वयं को परिवर्तित करने में और इस आशावाद के रसास्वादन से आप अत्यधिक लाभान्वित होंगे, जिससे सर्वोत्कृष्ट प्राप्ति, प्रगति, सफलता, ऊर्ध्वगमन हेतु आपके लिए द्वार खुल जायेंगे।

प्राणायाम से भी पर्याप्त शक्ति मिलती है। दीर्घश्वसन और प्राणायाम शरीर को बलिष्ठ बनाते हैं। सूर्य के समय बाहर भ्रमण को जायें। शीतल हवा के झोंके अपने मुख पर पड़ने दें। प्रतिदिन दीर्घ श्वास-प्रश्वास की यह क्रिया खुली धूप और हवा में करें। शारीरिक और मानसिक रूप से लाभ लेने के साथ ही आपके भीतर शक्ति का संचार होगा। खुली धूप और हवा में बाहर जाने पर आपके भाव अब नकारात्मक नहीं रहेंगे, आपका मन बदल जाता है। चारों दिशाओं से अबाध परिदृश्य पूर्ण विस्तृत स्थल पर जा कर मन भी संकुचित अवस्था को त्याग कर असीम, विस्तृत, विशाल भाव को प्राप्त होता है। ऊपर दृष्टि उठा कर, उच्च साम्राज्य की ओर निहारें। आप पूर्णरूपेण लाभान्वित होंगे।

अतः प्रतिदिन नियमित रूप से प्राणायाम का अभ्यास करें। आपके चारों ओर विकीर्ण अनन्त, अपरिमेय, असीम, अव्यय वैश्व प्राण से विपुल शक्ति संहृत कर के प्राणायाम शरीर के कोशों और नस-नाड़ियों को शक्ति प्रदान करता है; क्योंकि हमारे चारों ओर, सर्वत्र असीम वैश्विक शक्ति प्रवाहित होती रहती है।

हम वैश्विक शक्ति के एक विशाल क्षेत्र में निवास कर रहे हैं; क्योंकि यह सब माँ शक्ति की ही अभिव्यक्ति है। प्रकृति शक्ति की ही अभिव्यक्ति है; अतः सर्वत्र बाहुल्य, अक्षय, कभी समाप्त न होने वाली शक्ति का संचय है जिसमें हम रहते हैं, गति करते हैं और स्व-अस्तित्व रखते हैं। यह सब जानते हुए, प्राणायाम के द्वारा, सकारात्मक आदेशों का सृजन करें और अनुभव करें कि सिर के ऊपरी भाग से ले कर पाँव की उँगलियों के नख-पर्यन्त प्रत्येक कोश नया हो रहा है, सत्त्व से भरपूर हो रहा है, परिवर्तित हो रहा है, बलिष्ठ हो रहा है और जीवन प्राप्त कर रहा है।

इस प्रकार, दिन-प्रति-दिन, आप उस संजीवनी शक्ति से भरपूर होते जायेंगे। यह शक्ति सृजित-क्रिया नहीं है, प्रत्युत् यह असृजित-स्वाभाविक प्रक्रिया है। शक्ति का सृजन नहीं होता। यह तो शाश्वत है, अक्षय है। यह शारीरिक, मानसिक, स्नायविक और मनोवैज्ञानिक रूप से आपको पुनरुज्जीवित कर सकती है, आपका कायाकल्प कर सकती है। फेफड़े, हृदय, रक्त-संचार, श्वास-प्रक्रिया आदि, पूर्ण रूप से रस-परिवर्तन की प्रक्रिया द्वारा शरीर में नयी स्फूर्ति प्रदान करना प्राणायाम का कार्य है। हम अनन्त-अक्षय सम्पत्ति में ऐसे विलोल कर रहे हैं कि कनिष्ठिका उठा कर इसे स्पर्श करने की आवश्यकता भी नहीं लगती। यह इतनी समीप है-शक्ति, प्रकाश और जीवन की यह अक्षय सम्पदा !

तो आओ, हम धनवान् होते हुए भी भिखारी न बने रहें, सौभाग्यशाली होते हुए भी दुर्भाग्य की कल्पना न करते रहें। हम इस विपुलता, शक्ति के विशाल भण्डार और कोष के उत्तराधिकारी हैं। हम उत्तराधिकारी हैं, हमारा अधिकार है, जन्मसिद्ध अधिकार है। यह एक तथ्य है। इस क्षण आपकी स्थिति की यही वास्तविकता है। इसे पहचानें और धन्य हो जायें। परमात्मा और गुरुदेव का आशीर्वाद हमें प्राप्त हो। हम कभी रुकें नहीं। इस साधना को निरन्तर करते रहें। अतः हे प्रभु, मेरी सहायता करो! ऐसा ही हो!

१०. सदा आशावादी बनें!

गुरुदेव अपने दिव्य प्रवचनों में एक प्रिय सूक्ति कहते हैं और लेखों में लिखते हैं- "कभी निराश मत होओ, कभी निराश मत होओ।" एक कवि ने एक बार कहा - "मनुष्य के सीने से एक आशा सदा ही प्रवाहित होती है।" एक अन्य कवि ने कहा- "शोकाकुल ढंग से मुझे मत बताओ कि जीवन एक निस्सार स्वप्न है।" आप यहाँ पुरुषार्थ करके प्राप्ति करने आये हैं। पुरुषार्थ करें। भीतर से दृढ़ और ईश्वर में विश्वास रखें। "भीतर हृदय, ऊपर ईश्वर।" शक्तिवान् बनें। दृढ़ संकल्प करें और अविरत श्रम करते चलें। ऐसा करेंगे तो भगवान् आपकी सहायता करेंगे। 'भीतर हृदय, ऊपर ईश्वर' का यही अर्थ है। हृदय में उचित भाव रखें और सतत प्रयास करते रहें। श्रम करने पर ही ईश्वर की ओर से सहायता आयेगी।

जीवन के दो पथ हैं। एक है आशंका से पूर्ण, विश्वास का अभाव और नकारात्मकता- "मैं नहीं सोचता, मैं यह कर सकता हूँ। यह बहुत कठिन है। मैं कहाँ कर सकता हूँ?" दूसरा पथ है- "मैं कर सकता हूँ। मैं कर सकता हूँ अथवा नहीं, बिना प्रयास के मैं यह कैसे कह सकता हूँ? प्रयास करने पर ही बता पाऊँगा कि कर सकता हूँ अथवा नहीं?" अतः पहले ही निर्णय ले लेना कि मैं नहीं कर सकता, उचित नहीं है। यह विवेकहीनता है- "मुझे पहले प्रयास कर लेने दो। मैं पूर्ण प्रयास करूँगा।" अपना पूर्ण प्रयास कर लेने पर यदि आप सफल नहीं होते लक्ष्य-प्राप्ति में, तो मैं आश्वासन देता हूँ कि आप असफल नहीं हुए। सफलता आपकी न हो; परन्तु आप सफल हैं। आपने मनुष्य का कर्तव्य पूर्ण किया है।

क्योंकि आप ईश्वर की प्रतिकृति हैं; अतः आप नकारात्मकता की गठरी नहीं हैं। ईश्वर वह सब है जो सकारात्मक है, शुभ है, कल्याणमय है, अच्छा है, सुन्दर है। ईश्वर में किसी प्रकार की नकारात्मकता नहीं है। और आप उसकी प्रतिकृति हैं। आपमें सकारात्मकता की पूर्ण शक्यता है, सामर्थ्य है। अपनी दिव्य प्रकृति को मिथ्या प्रमाणित मत करें। प्रत्येक सोपान पर, सब कार्यों में आपका जीवन आपकी दिव्य प्रकृति को प्रतिभासित और प्रमाणित करे!

अतः जीवन के प्रति सदा आशावादी भाव अपनायें। सकारात्मक बनें, नकारात्मक नहीं। जीवन के प्रति आशावादी रुख की धारणा करें और अपने दैनिक जीवन में आशावादी वृत्ति अपना कर आगे बढ़ते चलें, निराशावादी नहीं। तभी आपका मन कवि के उस कथन की स्थिति में आयेगा-"भीतर हृदय, ऊपर ईश्वर।"

ऐसे ही हृदय के लिए हमें प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिए- "मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप मेरे निर्देशक बनेंगे, आपकी कृपा मेरा पथ प्रशस्त करने वाली शक्ति होगी और दिन-प्रति-दिन मेरे जीवन को प्रकाशित करेगी। अतः आपकी सहायता से ऐसा कुछ नहीं, जो मैं न कर सकूँ। आपकी सहायता से, हे

भगवन्, मेरे लिए सब-कुछ सम्भव है। निश्चित रूप से मैं आपकी सहायता लूंगा; क्योंकि आप कृपालु हैं। आप प्रेमस्वरूप हैं, दयालु हैं। सच्चे साधक पर अपनी कृपा-वृष्टि करने को आप सदा उद्यत रहते हैं। मुझे विश्वास हो गया है। मैं प्रयास करूँगा। इस विश्वास के साथ पुरुषार्थ करूँगा कि जहाँ मुझे आपकी आवश्यकता होगी, वहाँ आप मेरी सहायता करेंगे।"

अतः एक सच्चा साधक जीवन के प्रति दो भावों-आशावादी और निराशावादी, दो उपगमनों-आशावादी और निराशावादी, जीवन के प्रति दो प्रकार के दृष्टिकोणों-आशावादी और निराशावादी में से आशावादी दृष्टिकोण को ही अपनाता है, जो उचित भी है। अनुचित नकारात्मक अथवा निराशावादी भाव का वह त्याग कर देता है।

आशा एक दिव्य गुण है। संकल्प एक दिव्य गुण है। यह शक्ति की अभिव्यक्ति है। इसलिए हमारा कर्तव्य है अपने प्रति और परमात्मा के प्रति अपनी अन्तरात्मा को आशावादी स्थिति में रखें। सभी वस्तुओं के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखना हमारा कर्तव्य है। जीवन के प्रति यही दृष्टिकोण रखें। हमारा कर्तव्य है कि जीवन और कर्म के प्रति हृदय में सकारात्मक भावनाएँ बनाये रखने का प्रयास करें। यही उचित भाव है। इसे अपना लें, स्वीकार कर लें। इसी से जीवन में सफलता प्राप्त होगी।

११. तुम 'वहीं' हो !

प्रिय साधक वृन्द ! आप सब किसी वस्तु की जिज्ञासा कर रहे हैं, किसी के प्रति समर्पित हैं और सब एक ही आत्यन्तिक लक्ष्य को समक्ष रख कर कुछ अभ्यास भी कर रहे हैं। आभ्यन्तर लक्ष्य सबका एक ही है। वह है दिव्यानुभूति, ईश्वरानुभूति, परब्रह्म का साक्षात्कार, आप जो हैं उसी की अनुभूति-आत्मानुभूति ।

लौकिक दर्शन और सभी महामण्डलेश्वर कहते हैं 'कि उसकी प्राप्ति में संसार एक बाधा है। विषय-पदार्थों का आकर्षण मोह-जाल है। विवेक-शून्य जीवात्मा अपनी ही इच्छाओं के बन्धन में आ कर दास बन जाता है और ये आकर्षण उसे बहिर्मुखी बना कर अपनी लपेट में ले लेते हैं। जीवात्मा असहाय है; क्योंकि वह माया-जाल में फँस गया है।' ऐसा वे कहते हैं और हम भी उसे पूर्ण विश्वास के साथ मान लेते हैं।

सामान्य पथ-गामी यदि यह प्रवचन सुन ले और यह कहते हुए इसे ग्रहण कर ले कि 'हम असहाय हैं, माया का अतिक्रमण दुष्कर है, हम इससे ऊपर नहीं उठ सकते', तो इसका अभिप्राय है कि वह व्यक्ति सुगमता से धोखे में आ जाता है। इससे अच्छा वह जानता ही नहीं। किन्तु, क्या आप और अच्छा नहीं जानते ? क्या आप भी इसी भाँति धोखे में आ जाते हैं? क्या आप भी इस विचार और सिद्धान्त को मानते हैं? यदि आप भी यही सब ग्रहण कर रहे हैं, तो माया-जाल में फँसे लोगों और आपमें क्या अन्तर है? वर्षों का परित्याग और गंगा-तट के एकान्त आपके किस काम आये ?

अतः हमें अन्तर दिखाना है। पुस्तकों में, धर्मग्रन्थों में ऐसा लिखा हो, महामण्डलेश्वरों के प्रवचनों में भी यही क्यों न हो, हमारा ज्ञान और अच्छा होना चाहिए। और अच्छा, सत्य हमारे लिए प्रकट हो चुका है; किन्तु इसे आप तभी जान पायेंगे जब यथार्थ विचार-विश्लेषण करेंगे। उचित आत्म-परीक्षण से आप स्वतः ही प्रकाश प्राप्त करेंगे और ऐसी अनेक वस्तुएँ प्रकट होंगी जिन्हें आप पहले नहीं जानते थे। अनेक सत्य आपके समक्ष प्रकट होंगे।

तब अकस्मात् ही आपमें एक नया कौशल जागृत होगा, एक नवीन क्षमता का विकास होगा, एक योग्यता आयेगी यह जानने की, कि परम लक्ष्य तक पहुँचने में बाधा क्या है और अनुकूलता क्या है! यह भी ज्ञान होगा, कि आपने किसे आह्लादपूर्वक स्वीकार करना है और जीवन का अंग बनाना है तथा किसे उखाड़ कर दूर फेंकना है, दूर हटा देना है, भले ही वह आपके वर्तमान जीवन का हिस्सा हो-"नहीं, नहीं, अब मुझे अधिक अच्छी प्रकार ज्ञात हो गया है। अब मैं इसे रहने नहीं दूंगा। यह तो एक ऐसी बाधा है जो मुझमें ही है। मैं इसे दूर कर दूँगा।"

अतः यह विवेक-दृष्टि कि आध्यात्मिक जीवन में क्या अपेक्षित और क्या उपेक्षित है और इसका सतत ध्यान रखते हुए न करने योग्य कार्य की उपेक्षा और करने योग्य कार्य का सतत अभ्यास करते हुए आगे बढ़ना ही बुद्धिमान् और जागृत साधक का लक्षण है। जिस सत्य की खोज में आप भटक रहे हैं, उसे प्राप्त करने के लिए विवेक और आत्म-परीक्षण आवश्यक हैं, सहायक है।

एक महापुरुष ने एक ही बार में एक महान् उद्‌घोषणा द्वारा इस समस्या को सुलझा दिया। उन्होंने कहा कि हमारी चिन्तन-प्रणाली ही हमारे लिए सबसे बड़ी बाधा है, हमारी समस्या है। इनका अस्तित्व एक भ्रम ही है, तथापि हम निरन्तर इनसे संघर्ष करते रहते हैं। आत्म-निरीक्षण और विवेक के अभाव में हम इसे भयावह बना देते हैं। इसके पास जो शक्ति नहीं है, वह इसे दे कर हमने इसे महत्त्वपूर्ण बना दिया है-"हटाओ इस मूर्खता को। यह दुर्जेय नहीं है। तुम मुक्त हो, इससे ऊपर हो, इससे अप्रभावित हो।"

उस महान् आचार्य ने एक उत्कृष्ट युक्ति बतायी-"कोई बाधा नहीं है। बाधा का अस्तित्व ही नहीं है। तुम तो पहले से ही 'वही' हो, जो तुम स्वयं को बनाने की जिज्ञासा कर रहे हो। इस भ्रम को दूर करो कि तुम 'वही' हो। तुम 'वही दिव्य पूर्णत्व' हो, जिसे तुम खोज रहे हो। लक्ष्य यहीं है। उसके पास नहीं जाना है, उसे प्राप्त नहीं करना है, प्रत्युत् उसका तो बोध करना है।"

विचित्र रूप से संक्षिप्त, सार रूप में अद्‌भुत उक्ति उस महापुरुष ने इस प्रकार कही कि इसे बताने के लिए मुझे अधिक शब्दों की आवश्यकता नहीं है। आधे श्लोक में मैं इसकी व्याख्या कर सकता हूँ-"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो-ब्रह्मैव नापरः।" यह तथाकथित विश्व जिसे तुम सत्य मान रहे हो, वास्तव में मिथ्या है। ब्रह्म सत्य है। एक वही ठोस सत्य और तथ्य है और वह है सच्चिदानन्द ब्रह्म, अद्वैत सत्य, नित्य, शाश्वत, अपरिवर्तनशील, एकरूप वास्तविकता। केवल वही वास्तविकता है और तुम उससे पृथक् नहीं हो। तुम्हारी उस शाश्वत, दिव्य, पूर्ण सत्ता पर कुछ काल्पनिक अभिवृत्तियाँ जुड़ी हुई हैं।

'इसे दूर करो। जिस क्षण तुम इन अभिवृत्तियों को दूर करोगे, उसी क्षण तुम अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर लोगे। तुम्हें अब कुछ बनना नहीं है। पूर्वतः ही तुम वही हो।' इस पर बल देते हुए उस महापुरुष ने कहा- "तुम 'वही' हो, केवल वही हो।" कितना महान् सत्य! मोक्षप्रदायक सत्य! अद्‌भुत रूप से शक्ति प्रदान करने वाला सत्य!

अतः यह एक युक्ति है जो अभी आपके हाथ में है। यह आपकी है। इस नियम को अपना लें। बाधा, बाधा नहीं रहेगी; बन्धन, बन्धन नहीं रहेगा। आप अनुभव करेंगे कि नित्य-मुक्त अवस्था में आप आनन्द में हैं। **ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो-ब्रह्मैव नापरः।**" यही सत्य है, यही तथ्य है। यह सत्य तत्काल मोक्ष प्रदान करने वाला सत्य है जिस तक आपका गमन (पहुँच) भी अचिरेण सम्भव है। इसका बोध करें और मोक्ष प्राप्त करें!

१२. हमारे और ब्रह्म के मध्य अन्तराल नहीं है

ज्योतिर्मय आत्मन् ! सर्वत्र विद्यमान दिव्य सत्ता आपकी सतत सहयोगी बने जो आपके समीपतम से भी समीपतम है, आपके प्रत्येक कोश में विराजित है और विश्व की हर वस्तु में जिसका वास है! मन, वचन और कर्म तथा जीवन को नया मोड़ देने वाली अदृश्य शक्ति का सहयोग आपकी जागृति बनाये रखे !

उसकी सशक्त दिव्य, प्रभावपूर्ण मित्रता, अपनी निकटतम-सन्निधि की ऊर्जा से आपके विचारों को उत्कृष्टता प्रदान करे! वह आपको अच्छा चिन्तनशील बनाये, आपके हृदय में अच्छे भावों को संश्रय दे, ऐसी मधुर वाणी बोलने योग्य बनाये जो आश्वासनात्मक और शान्तिप्रद हो! आपके मुख से निःसृत शब्द एकता, भातृभाव, प्रसन्नता, शान्ति और प्रकाश फैलाने वाले हों, इसके विपरीत न हों। सब प्रकार से सकारात्मक और निर्माणात्मक हों, नकारात्मक और विस्फोटक न हों।

सहज रूप से आपके स्वभाव में ये गुण हों। सदा एकरस, अचल, अपरिवर्तनशील ईश्वर का प्रेरक और दिव्य साथ आपको निरन्तर प्राप्त है, तो स्वाभाविक रूप से आपकी प्रकृति भी वही होना सरल है। इतना पर्याप्त नहीं है कि आप संसार के साथ हैं। इतना भी पर्याप्त नहीं है कि संसार आपके साथ है। सत्य तो यह है कि उससे भी दश गुणा अधिक, सहस्र गुणा अधिक आप उस दिव्य सत्ता में संस्थित हैं। आपका वास, गमन और अस्तित्व उसी दिव्यता में है। वह सतत आपके साथ है। अन्दर भी और बाहर भी वही है। दिखाता बहिश्च तत्सर्व व्याप्य नारायणः स्थितः (बाहर-भीतर व्याप्त हो कर वही नारायण स्थित है)।" जागरूक रहें। इस पर मन एकाग्र करें। भगवान् कृष्ण कहते हैं- "**समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्। भगवान वैविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति।**" (जो मनुष्य समान रूप से सब प्राणियों में उस परमेश्वर को, उस अविनाशी को नश्वर में देखता है, वास्तव में वही देखता है।)

इसी कारण से आपको अन्तर्दृष्टि का विकास करना है, इस भौतिक शरीर की बाह्य भौतिक दृष्टि का नहीं। वह आपका वास्तविक आत्म-तत्त्व नहीं है। बोध दृष्टि नहीं है। वह तो केवल मिथ्या, परिवर्तनशील,

नश्वर, क्षणिक और अनित्य वस्तु का दर्शन करती है। यह असत् का दर्शन करती है। "**यत् दृश्यं तद् नश्यम्**"-जो दृश्य है, वह नश्वर है। अतः यह दृष्टि आपकी सहायक नहीं है।

अविरत रूप से द्रष्टा और दृश्य का विवेक बनाये रखें। केवल द्रष्टा ही सत्य है, दृश्य तो जाती बहार है। नित्य, शाश्वत, सत्य स्वरूप के दर्शन करना आपकी आभ्यन्तर दृष्टि का कार्य है। आपकी अन्तर्दृष्टि ज्ञान से प्रकाशित है-उस ज्ञान से जो ऋषियों-मुनियों के सान्निध्य से प्राप्त हुआ है, आध्यात्मिक ग्रन्थों से प्राप्त हुआ है और अद्‌भुत अमूल्य सांस्कृतिक पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुआ है।

अतः आपके जीवन का उद्देश्य यही होना चाहिए कि अन्तर्दृष्टि से सत्य को जानें। सत्य का दर्शन निरन्तर अन्तःकरण में ही होना चाहिए। इस सत्य का दर्शन करते हुए इस बात के लिए सचेत रहें कि आप निरन्तर ईश्वर के सान्निध्य में हैं। इसीलिए वह निकटतम, सर्वाधिक समीप और अन्तरंग
हमारे और ब्रह्म के मध्य अन्तराल नहीं है शक्ति, बल और प्रभाव है- "मैं जब इस प्रकार से रह रहा हूँ और क्रियाशील हूँ, तो उसी की सतत सन्निधि में ही मैं सब-कुछ कर रहा हूँ।

"मैं अन्धकार में गति नहीं कर सकता। मैं सदा प्रकाश में ही रहूंगा; क्योंकि सब भाँति के अन्धकारों से परे, ज्योतियों की ज्योति परम ज्योति परमेश्वर मेरे साथ है। उसमें रह कर मेरे लिए अन्धकार कहाँ? मैं तो प्रकाश में वास करता हूँ, प्रकाश में घूमता हूँ। बाहर-भीतर प्रकाश ही मुझमें भरा है। अतः मुझसे बाहर आने वाली प्रत्येक वस्तु भी उसी गुण का स्वरूप होगी।" ज्योति-स्वरूप परमेश्वर आप सब पर ऐसी ही कृपा-वृष्टि करें!

पूज्य गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी महाराज को प्रेमपूर्ण नमन है जो इस महान् तथ्य को पुनः-पुनः कहने में कभी परिश्रान्त नहीं हुए कि 'ईश्वर तुम्हारे भीतर निहित है।' वे कहते थे- "यह छोटा-सा 'अहं' जो भीतर निहित परमेश्वर के दर्शन में बाधा है, दूर होना चाहिए।" इसी की अत्यधिक आवश्यकता है। यही साधना है। 'अहं' को मारो। जीने के लिए मृत्यु का वरण करो।

अहंभाव के अस्तित्व में आप बाह्य भौतिक निरपेक्ष जगत् में उद्वेगपूर्ण, अस्थायी, मिथ्या जीवन व्यतीत करते हैं। आपने अभी वास्तविक, सत्य, मौलिक तथ्यों से पूर्ण जीवन प्रारम्भ नहीं किया है। अतः गुरुदेव कहते हैं-"वास्तविक जीवन स्वाभाविक रूप से ही दिव्य है; क्योंकि वस्तुतः तुम भी दिव्य हो।" दिव्यता तुम्हारी वास्तविक पहचान है, तुम्हारा स्वरूप है। तथापि जब तक वह अवस्था नहीं आती, तुम्हारी गतिविधियों को क्रियान्वित करने वाली ऊर्जा उसमें प्रतिष्ठित नहीं है। उसकी उपेक्षा हो रही है। वह सो रही है और यह मिथ्या 'अहं' अपने केन्द्रीय स्थान में रह कर इन्द्रियों के पाँच घोड़ों का नियामक बना हुआ है। इनके आगे झुक रहा है और इन्हें क्रियाशील रखे हुए है। इस नियामक को बाहर धकेल कर सत्य को केन्द्र में स्थापित होना चाहिए।

एवंविध उन्होंने कहा- "इस अहं को मारो। जीने के लिए मरो। दिव्य जीवन यापन करो।" इस 'अहं' की मृत्यु के उपरान्त ही आप जीवित बाहर आ सकते हैं। इसका बोध करें कि केवल वही अस्तित्व में है। ऐसा परिवर्तन आने पर आप और अधिक द्वितीय-तृतीय स्तर में नहीं रह जाते, स्थूल और भौतिक नहीं रहते। अब आप आध्यात्मिक हो गये हैं। आपका जीवन दिव्य हो गया है। जीवन सत्य-स्वरूप हो गया है। आपका जीवन अन्तर्निहित सत्य की अभिव्यक्ति हो गया है।

अतः आयें, परब्रह्म की सतत, तत्काल, निकटतम घनिष्ठता में जागृत हों। इस लक्ष्य के लिए किसी यात्रा की आवश्यकता नहीं है। यात्रा तो गन्ता और गन्तव्य के मध्य की दूरी के कारण होती है। यहाँ दूरी नहीं है; अतः तत्काल जागृत होना है। आपमें और वास्तविकता में कोई अन्तराल नहीं है। ऐक्य भाव में आप दोनों स्थित हैं। सुप्रीम ताओवाद में- यह जागृति का सहज पथ है जिसमें दो अर्ध एक पूर्ण इकाई बनाते हैं।

परमात्मा आपको जागृति की यह अवस्था प्रदान करें। गुरुजनों द्वारा दर्शाया गया यह पथ पूर्णरूपेण हमारा पथ प्रशस्त करे, ताकि हम सत्य की जागरूकता को प्राप्त कर सकें। हम आभ्यन्तर यात्रा कर रहे हैं, बाह्य नहीं ऐसा आचार्यों का कथन है। गुरुदेव ने कहा- "ध्यान द्वारा साक्षात्कार करो।" ध्यान एक आन्तरिक प्रक्रिया है जहाँ हम मन, बुद्धि की जागृत अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं। यही जागृत अवस्था सर्वदा विद्यमान सत्ता के साक्षात्कार का साधन बन जाती है। सार्वभौमिक सत्ता और परम प्रिय गुरुदेव आपको नित्य-प्राप्त, आपकी अपनी इस रहस्यमयी साधना में पूर्ण सफलता प्रदान करें। यह एक विरोधाभासी रहस्य है कि आप एक ऐसी वस्तु को खोज रहे हैं, जिसे खोजने की आवश्यकता ही नहीं है। उस वस्तु को खोज

रहे हैं, जिसका कभी अभाव नहीं था, जो कभी खोयी नहीं थी। सदा वर्तमान वस्तु की खोज कर रहे हैं, खोजने की आवश्यकता कहाँ है ?

जब आपको आभास हो गया कि खोजने की आवश्यकता नहीं है, तो आप लक्ष्य तक पहुँच ही गये हैं। आपने अपनी नियति का लेख पूर्ण कर लिया है। जब यह ज्ञान हो गया है कि खोज व्यर्थ है, अनावश्यक है, मूर्खता है, तो आप वही हैं। ऐसी कृपा-वृष्टि आप सब पर हो, यही प्रार्थना है।

ॐ

गुरु के आदेशों का अनुपालन करने से दैवी कृपा प्राप्त होती है। अहेतुकी होते हुए भी यह कृपा-वृष्टि उस पर होती है जो स्वयं को योग्य अधिकारी बना लेता है।

जल की प्रकृति बहना है। यह बिना किसी शर्त के बहता है। जहाँ-कहीं कोई गड्ढा (गर्त) आये, उसे भर देता है। जहाँ-कहीं ऊँचाई आ जाये, उसके ऊपर से बहता है; यद्यपि इसका स्वाभाविक तात्कालिक स्वभाव उसके विपरीत है।

ऐसे ही दैवी कृपा का नियम है। जहाँ अहंभाव का अभाव है, जो आपके भीतर गुरु के आदेशों का पालन करते हुए सेवाभाव और नम्रता से अंकुरित हुआ है, नम्र हृदय की उस निम्न दशा में ईश्वरीय कृपा का बहाव स्वाभाविक और तत्काल होता है। "स्वयं को रिक्त करो, मैं तुम्हें भर दूँगा।"

आप देखते हैं कि जीवन में गुरु के आदेशों के अनुपालन को हम जो स्थान देते हैं, उसके और प्रभु-कृपा के मध्य आध्यात्मिक सम्बन्ध है। यदि हमारा जीवन गुरु की शिक्षा के अनुरूप है, तो निश्चित रूप से हम दैवी कृपा के अधिकारी बन जाते हैं।